यज्ञपद्धति में जीवात्मा अभीष्ट लोक की प्राप्ति के लिए विशिष्ट यज्ञ करता है और फलस्वरूप अपने इच्छित लोक में पहुँच जाता है। फिर यज्ञजन्य पुण्य के समाप्त हो जाने पर वह वर्षा के रूप में पृथ्वी पर उतर कर अन्न का रूप धारण कर लेता है। मनुष्य उस अन्न को खा कर वीर्य में परिणत कर देता है, जिससे स्त्री में गर्भाधान होता है। इस प्रकार, जीवात्मा फिर मनुष्य-शरीर धारण कर यज्ञ करता है। यह चक्र इसी प्रकार चल रहा है। परिणामस्वरूप जीव जन्म-मृत्यु रूप भवबन्धन में ही भटकता रहता है। परन्तु जो कृष्णभावनाभावित है, वह ऐसे यज्ञों को नहीं करता। वह सीधे-सीधे कृष्णभावना को अंगीकार कर लेता है और इस विधि से भगवद्धाम को फिर लौटने के लिए कटिबद्ध रहता है।

गीता के निर्विशेषवादी व्याख्याकारों का अयुक्तियुक्त पूर्वाग्रह है कि प्राकृत-जगत् में परब्रह्म ने जीवत्व धारण कर लिया है । इसको प्रमाणित करने के लिए वे गीता के पन्द्रहवें अध्याय के सातवें श्लोक को उद्धृत करते हैं। परन्तु इस श्लोक में भी जीव को **ममैवांशो**, अर्थात् **श्रीभगवान का नित्य भिन्न-अंश** कहा गया है । श्रीभगवान् का भिन्न-अंश जीव संसार में गिर सकता है, पर अच्युत कहलाने वाले परमेश्वर श्रीकृष्ण का पतन कभी नहीं होता । अतः इस धारणा को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि परब्रह्म जीवरूप ग्रहण करते हैं। स्मरणीय है कि वैदिक शास्त्रों में ब्रह्म (जीवात्मा) और परब्रह्म (परमेश्वर श्रीभगवान्) में स्पष्ट भेद है।

**अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।**
**अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।।४।।**

**अधिभूतम्**=अधिभूत हैं; **क्षरः**=नश्वर; **भावः**=पदार्थ; **पुरुषः**=समष्टि-विराट्; **च**=तथा; **अधिदैवतम्**=अधिदैव है; **अधियज्ञः**=अधियज्ञ हूँ; **अहम् एव**=मैं (कृष्ण) ही; **अत्र**=इस; **देहे**=देह में; **देहभृताम् वर**=हे देहधारियों में श्रेष्ठ (अर्जुन) ।

**अनुवाद**

नित्य परिवर्तनशील प्रकृति अधिभूत है; विराट् पुरुष अधिदैव है और हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! जीवमात्र के हृदय में रहने वाला मैं ही अधियज्ञ हूँ।।४।।

**तात्पर्य**

भौतिक प्रकृति नित्य विकारी है। सभी प्राकृत शरीर छः अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं: जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं, कुछ समय तक विद्यमान रहते हैं, प्रजनन करते हैं, क्षीण होते हैं और अन्त में नष्ट हो जाते हैं। यह भौतिक प्रकृति **अधिभूत** है। परमेश्वर के विराट् रूप की वह धारणा, जिसमें देवता और उनके लोकों का भी समावेश है, **अधिदैव** कहलाती है, क्योंकि उसके उद्भव-विनाश का निश्चित समय है। जीवात्मा शरीर का सहगामी है। जीव का अन्तर्यामी, भगवान् श्रीकृष्ण का अंश परमात्मा **अधियज्ञ** है। **एव** शब्द इस श्लोक के सन्दर्भ में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा श्रीभगवान् ने यह दृढ़तापूर्वक सिद्ध किया है कि